

**बाबुल की गलियों से आँचल की नमियों तक:
कितना लम्बा सफ़र!**

देखने में हम खूब अच्छे मोटे थे। सोचते थे कि अगर हम लड़का होते तो नौकरी कर लेते। नौकरी करना हमारा सपना था। दो बहनों की शादी हो चुकी थी। उनको ससुराल में बहुत परेशानी थी—दो-चार साल में भी एक कपड़ा न मिलता था। मैं सोचती थी कि हमारे पिताजी मास्टर हैं, तब भी बेटियों की ऐसी शादी क्यों कर दी? यही मनाती थी कि हमारी जिससे शादी हो वह नौकरी वाला हो और खूब पैसा हो। शहर में उसके साथ रहेंगे। जैसे हमारी बहनें रहती हैं वैसे कभी नहीं रहेंगे...और मायके में अकेले कभी नहीं आयेंगे...

—मधुलिका की डायरी से

हमने जबसे औरतों की ज़िन्दगियों से जुड़ कर काम करना शुरू किया है, तबसे आये दिन घरेलू और सामाजिक-हिंसा की तमाम वारदातें रोज़ सामने आती हैं। कभी-कभी लगता है कि जवानी के पहले अहसास से लेकर सिर के सारे बाल पक जाने तक सारी ग़रीब औरतों के हिस्से में एक-सा ही दर्द आता है—सब पहले मायके में बोझ बनती हैं, फिर ससुराल में अपमान झेलती हैं, पिटती हैं, भूखी रहती हैं, और सभी के शरीर किसी दूसरे की मिल्कियत बन जाते हैं.... लेकिन इन दुखों में हम अक्सर इतने उलझ जाते हैं कि पलट कर देख ही नहीं पाते उन सपनों को, जो हम सबने कभी बड़े चाव से, बड़े रस लेकर देखे थे। यह सच है कि उनमें से बहुत सारे सपने पूरे न हो सके या बड़ी बेरहमी से कुचल दिये गये, पर आज अपनी कहानियाँ लिखते और बाँटते वक़्त यह भी महसूस कर रहे हैं कि हमारी सम्भावनाओं, अभावों, संघर्षों और चुनौतियों के बारे में वे सपने भी हमें बहुत कुछ सिखाते हैं, जिन्हें हम ज़िन्दगी के हर अहम मोड़ पर देखते हैं।

हमारे बचपन के दुख-सुख भी कब और कैसे किशोरावस्था की टीसों और ख्वाबों में बदल गये, इसकी ख़बर खुद हम को ही नहीं लगी। पर याद करने बैठे तो यह खयाल आया कि हमारे शरीर में होते बदलाव रोमांचक रहस्यों की तरह खुलकर किस तरह हमें उत्साह और भय से भर देते थे! ऊपर से वह सारे शौक और सपने, जो जवान होते-होते परवान चढ़ने लगे थे और थामे नहीं थमते थे।

इनके साथ ही महसूस करते गये बड़ों का लगातार सख़्ती के साथ बढ़ता नियंत्रण और रोक-टोक, सारे ज़माने की टीका-टिप्पणी, जवाँ मर्दों की छेड़खानियाँ और नित नये नियम-कायदों की

घुटन। मधुलिका और पल्लवी दोनों को अच्छी तरह याद है, जब उनके पिता उनकी माओं को डपट कर बोले थे, "इससे कह दो, दुपट्टा डाल कर निकला करे।"

मधुलिका को बाद में यह भी कहा गया: "खाना बनाना नहीं सीखोगी?..... तो ससुराल में मार डाली गयीं, तब भी हम नहीं आएँगे।"

एक दिन पल्लवी सबका खाना पकाकर स्कूल चली गयी, पर अम्मा से खाने का आग्रह करना भूल गयी। तब अम्मा ने देर तक खाना ही नहीं खाया और खूब डाँटा: "ऐसे ही करोगी, तो ससुराल में कैसे गुज़र होगी? तुम्हारी औकात ही क्या है? जलाकर मार डाली जाओगी।"

...सजना-सँवरना भी हमारे मन को जितना ज़्यादा भाता, बड़ों के भीतर उतनी ही घबराहट पैदा कर देता। समझ में नहीं आता था कि हमारी वही अम्माएँ, जो बचपन में हमें खूब सजाकर अपने शौक भी पूरे किया करती थीं, अब सबके साथ मिलकर हमारे सजने-सँवरने पर रोक-टोक क्यों लगाने लगी थीं? पल्लवी लिखती है: "मैं जब छोटी थी, तो अम्मा अक्सर चूड़ियाँ खरीद कर पहना देती थीं पर, दस-बारह साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते रोक-टोक शुरू हो गयी। मैं जब चूड़ियों के लिए ज़िद करती, तो अम्मा और बाबू से यही सुनने को मिलता कि अब तुम बड़ी हो गयी हो, अपने घर जाकर खूब चूड़ी पहनना।"

शायद दोनों को डर यह रहा होगा कि जवान होती बेटी सजेगी, तो लोग क्या कहेंगे...और अगर किसी की नज़र में चढ़ गयी, तो खामियाज़ा कौन भुगतेगा?

इसी तरह राधा को भी वह दिन याद है जब उसने पहली बार नाखूनी (नेल-पॉलिश) लगायी थी। पिताजी ने तब डाँट कर सब की सब रेज़र से खुरचवा डाली थी।

इस सबके बावजूद जवानी के सपने इन धमकियों और डाँटों से कहाँ सहमने वाले थे? मन होता था कि पंख लगाकर अपना गगन ढूँढ़ने दूर उड़ जाएँ। कितने सारे सपने थे, जो हमारी आत्मा और आँखों में समा गये थे। सोचते थे कि खूब पढ़ेंगे-लिखेंगे, नौकरी करेंगे, अपनी पसन्द से प्यार और शादी करेंगे...और पति मिलेगा तो ऐसा, जो सुन्दर होगा, नौकरी पेशा होगा और खूब प्यार करेगा हमें। शहर में घर होगा, और नहीं होगा तो कम से कम एक छोटा-सा कमरा तो ऐसा होगा ही, जिसमें बैठ कर पति के साथ ढेरों बातें होंगी।

मगर हमारे माँ-बाप के ऐसे हालात कहाँ थे कि मोटे-मोटे दहेज देकर ऐसे पति खरीद पाते? हम सब तो बोझ जैसी बन गयी थीं अपने-अपने परिवार की छातियों पर! आज सोचते हैं कि जब हमारी परिस्थितियाँ ऐसी थीं, तब फिर हमने इतने अभावों में रहकर भी क्यों कामनाएँ कीं ज़ेवरों और कपड़ों की, नौकरी वाले खूबसूरत पतियों की और शहरी ज़िन्दगियों की? अहम सवाल यह भी है कि क्यों हममें से एक भी लड़की अपनी जवानी के ख़्वाबों को किसी खेतिहर-किसान या मज़दूर के साथ नहीं जोड़ सकी? अब लगता है कि कच्ची उम्र में बुने हमारे ये सपने भी वर्ग, पैसे, और मान-सम्मान की राजनीति में किस क़दर जकड़े थे। अपनी दीदियों और भाभियों को उनकी शादियों के बाद देखा करते, तो यही समझ में आता कि जिन लड़कियों के पतियों के पास शहरी नौकरियाँ होती हैं, ढेरों गहनें और कपड़े होते हैं, उनकी तो मायके जाने पर खूब पूछ होती है, अच्छे खाने और नाश्ते से

सत्कार होता है! वहीं किसी गरीब-किसान या मजदूर की पत्नी जब पीहर लौटती है, तो लोग मुँह बना लेते हैं। ...पहले से ही घटी बिटिया की इज्जत और भी घट जाती है।

ऐसे में सपनों का टूटना तो पहले से ही बदा था। पर हमें यह मालूम कहाँ था? हमें तो तभी खबर लगी, जब अनसोई आँखों और बदलती करवटों के साथ बड़े जतन से खड़े किये हमारे शीशमहल अपने ही सामने चूर-चूर होकर बिखरने लगे।

और, हममें से एक ने तो सपने देखे ही नहीं। बाकी सबने जब किशोरावस्था पर डायरियाँ पढ़ीं, संध्या उस दिन चुप रही! सिर्फ तब ही नहीं, हमेशा अपनी बातों को उत्साह और ढिठाई से सामने रखने वाली संध्या प्यार और यौनिकता की हर चर्चा में खामोश हो जाती। बाद में एक बार उसने अपनी डायरी में लिखा भी: "जब-जब यौनिकता, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों, या समलैंगिकता पर बातचीत उठती है, तो मैं अन्दर-अन्दर घुटती रहती हूँ। सोचती हूँ, ये सब चुप क्यों नहीं रहती है.....हमारे पति को भी इस बात की चिन्ता है कि यह इन बातों को सुनने से क्यों कतराती रहती है?"

क्यों संध्या ने जवान होते-होते उन तमाम भावनाओं से मुँह मोड़ लिया जिनको यौनिकता की स्वाभाविक प्रक्रिया से जोड़ा जाता है? इसका कारण बचपन में पाया सदमा ही था या कुछ और भी, संध्या यह आज तक नहीं जान सकी है। यही याद आता है उसे कि एक भी ख्वाब नहीं देखा उसने प्यार-मोहब्बत या शादी का। और, जब-जब शादी की बात चलती, तो बार-बार यही मनाती थी कि कोई लड़का ही न मिले उसके लिये। शादी ही न हो ताकि उसकी खातिर भाइयों को किसी से मिन्नत-खुशामद न करनी पड़े।

जवानी का ताल्लुक अगर सिर्फ देखे-अनदेखे ख्वाबों और उनके टूटने व चटखने के दर्द से होता, तो शायद उन्हें झेलना हमारे लिये थोड़ा आसान हो जाता... लेकिन हमारी तकलीफें तो वह दसियों खूँफ बढ़ा गये, जो कदम-कदम पर हमारे सामने मुँह बाये खड़े हो जाते थे। आये दिन हमारे भीतर नयी दहशतें और डर पैदा कर दिये जाते थे—कभी माहवारी का डर, तो कभी माहवारी से पहले शादी न हो पाने से जुड़ी पारिवारिक-बदनामी का डर। ...कभी खूबसूरत दिखने का डर, तो कभी समाजिक नियमों के खिलाफ जाकर प्यार करने के अंजाम का डर। बहाने-बहाने से हमारे जाति-बिरादरी के लोग यह भी समझाने से न चूकते कि समाज का जिम्मा जवान लड़कियों और औरतों के चरित्र पर अनगिनत सवाल लगाने का है और, उन सवालों का खंडन करने या उन पर प्रश्न चिन्ह लगाने का हक आरोपित औरत को कतई नहीं! इसके साथ ही दुनिया भली-भाँति यह भी दिखाती जा रही थी कि बिना पति की स्त्री को केवल समाज के हाशिये पर जगह दी जाती है, चाहे उसके पति को मौत ने छीना हो और चाहे उसने विवाह के रिश्ते से स्वयं मुँह फेरा हो!

000

मधुलिका जब किशोरावस्था की बीती बातों को पन्नों पर उतारने बैठी, तो सबसे पहले यही याद किया कि जवानी का अहसास कैसे पहले-पहल डर बन कर ही आया! दस साल की उम्र में दो किलोमीटर पैदल जब घर से स्कूल जाती, तो रास्ते में कभी-कभी लड़के गन्दी-गन्दी बातें बकते, भदे मजाक करते। जूनियर हाई स्कूल गयी, तो वहाँ भी मास्टर की नज़र में वासना दिखी। बदन से स्वस्थ

और स्वभाव से मस्त मधुलिका का जल्दी जवान हो जाना ही उसके लिये पीड़ादायक बन गया। लड़कों के साथ मस्त होकर जो खेल-खेलती थी, उनमें रोक-टोक लगने लगी। जब नहीं मानती, तो मार खाती। इसी तरह उसके हँसी-ठहाकों से भी सबको कड़ी शिकायत होने लगी। एक बार बैलों को पानी डालते हुए ऐसे ही हँस पड़ी किसी बात पर, तो बड़े भाई ने बहुत मारा।

मधुलिका का मन घर के कामों में बिल्कुल नहीं लगता था। हमेशा मौज में रहने वाली मधुलिका तो पुलिस की नौकरी करना चाहती थी, हुड़दंग मचाना चाहती थी, खुली हवा में साँस लेना चाहती थी। पर जब-जब ऐसा करना चाहा, तब-तब मार खायी। कभी माँ से, कभी बड़ी बहन से, तो कभी भैया से। सोचती रह जाती कि एकाएक घर से बाहर निकलने की मनाही क्यों हो गयी? हँसने में क्या गुनाह है? पर एक रोज़ गाँव की एक कुँवारी लड़की जान से मार डाली गयी! तब भाभी ने बतलाया: “वह लड़की, लड़कों से बहुत बातें करती थी। बदचलन थी—इसीलिए मारी गयी।” यह जानकर मधुलिका के मन में गहरे तक एक दहशत-सी बैठ गयी। तय कर लिया—किसी लड़के से बात नहीं करेगी, वरना सब ग़लत मान बैठेंगे। बस यही आस लगाकर बैठ गयी कि अच्छे और नौकरी-पेशा लड़के से ही ब्याह करूँगी।

000

जवानी की दहलीज पर खड़ी चाँदनी की चमकती आँखें भी न जाने कितने ख़्वाबों में रंग भरा करतीं, लेकिन कल्पना की इन तस्वीरों के धुँधलाने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगा। मधुलिका की तरह उसे भी परिस्थितियों ने जल्द ही दिखला दिया कि जिन्दगी के कितने सारे ज़हर उसके ख़्वाबों को ख़त्म करने पर आमादा हैं। सजने का बहुत शौक था। एक बार आँखों में काजल लगाते-लगाते काजल से एक तिल बना लिया। अम्मा ने देखा तो बहुत पीटा। पर अम्मा की मार मन को बाँध नहीं पायी। यही सोचती रहती कि शादी के बाद कोई पाबन्दी नहीं होगी। ख़ूबसूरत कपड़े और ज़ेवर मिलेंगे। ख़ूब फ़ैशन करके शौक से रहेंगे।

चाँदनी के अब्बू का मामा के साथ उठना-बैठना और पीना-पिलाना ख़ूब चलता था। पास ही में एक पुरवा था, जहाँ देह का धन्धा होता था। वहाँ की एक औरत के साथ अब्बू के भी ताल्लुक़ात थे। शायद अम्मा के रोज़-रोज़ पिटने का यह भी एक बड़ा कारण था। मामा भी अब्बू के साथ कभी-कभी पुरवा में जाते थे। एक बार जब अम्मा को पता चला कि मामा ने एक रैदास औरत के साथ ज़बरदस्ती की है, तो वह बहुत बरसी मामा पर। बाद में इसी मामा ने अब्बू से शिकायत कर दी कि उनकी बहन (चाँदनी की फूफी) का पड़ोस के एक लड़के से चक्कर है। अब्बू और चाचा दोनों फूफी पर बहुत नाराज़ हुए। उसके बाद चाँदनी तो जान ही न पायी कि कैसे-क्या हुआ फूफी को? बस इतना ही जाना कि एक दिन किसी बहाने से दोनों भाई फूफी को लेकर डॉक्टर के यहाँ गये और ज़हर का इन्जेक्शन लगवा दिया। फूफी मर गयीं। परिवार ने इस मौत पर चुप्पी साध ली।

यह हादसा चाँदनी को दहला गया। मामा ने एक औरत के साथ ज़बरदस्ती की, तो उन्हें सिर्फ़ डॉट पड़ी और, फूफी ने किसी से प्यार किया तो जान से हाथ धोना पड़ा!

फूफी की इस मौत की वजह से ही शायद चाँदनी और उसकी बहनों के पैरों में ज़्यादा ही जंजीरें बाँध दी गयीं। रास्ते चलते छेड़खानियों की घटनाएँ होतीं, तो मन दहशत से भर जाता कि अम्मा को कहीं कुछ पता न चल जाये। अब्बू, अम्मा की जो दुर्गत करते थे, अम्मा उसका सारा गुस्सा बेटियों को मार-कूट कर उतारती थीं। जब भी मारतीं, इतना मारतीं कि खून बहने लगता।

अम्मा-अब्बू ने दस-ग्यारह साल की ही उम्र में चाँदनी की सगाई अपनी दूकान पर काम करने वाले एक लड़के से तय कर दी। वह हमेशा चाँदनी के साथ तफ़रीह करने के मौके तलाशता रहता। और तो और, माँ-बाप और मामा के अलावा अब यह होने वाला शौहर भी चाँदनी का चौकीदार बन गया—हर वक़्त कड़ी निगरानी रखता। जो मरज़ी होती, वही करता। कहता—“शादी तो मुझसे ही होनी है।”

चाँदनी के मन में क्या है, वह क्या सोचती या चाहती है? इसकी उसे ज़रा भी परवाह नहीं थी।

000

चाँदनी की तरह ही सजने-सँवरने की शौकीन गरिमा का मन भी कम पींगे नहीं भर रहा था!

गरिमा की आँखें सपनीली थीं। उसकी विधवा माँ की आँखों में बेटी की उठती जवानी को लेकर डर समाया रहता। गाँव की एक लड़की गरिमा की चचेरी-भाभी के भाई को प्यार करने लगी थी। विरोध हुआ, तो वह ज़हर खाकर मर गयी। कुछ दिनों बाद वह लड़का भी ज़हर खाकर मर गया। इस घटना से सहमी गरिमा की माँ ने अपनी बिटिया से हाथ जोड़कर विनती की, “बेटी जब कहोगी, तब तुम्हारे पैर पूज (ब्याह कर) दूँगी। पर बदनामी न कराना।”

माँ के मन में बैठे इस डर से गरिमा सहम गयी। उसका मन लड़कों के प्रति आकर्षित होकर लहराता तो था, लेकिन अपने बहकते मन को बस में करके आसमान से वापस ज़मीन पर लाना भी वह खूब सीख गयी। सत्रह-अठारह वर्ष की थी, तो उसका दिल एक सहेली के भाई पर आ गया था—तेज़ धूप में भी वह लड़का गरिमा का छत पर इन्तज़ार करता। बात कहीं आगे बढ़ती, इससे पहले ही माँ को पता चल गया और गरिमा को तुरन्त नानी के घर भेज दिया गया।

000

विधवा माँ की बन्दिशों और बीते हुए वैभव व सम्पन्नता के बीच घुटती शिखा की स्थिति भी कुछ इसी तरह की थी। किशोरावस्था के सपनों को जैसे ही आकार देने की कोशिश करती, माँ की तस्वीर आँखों के सामने आ जाती। हर ख़्वाब शुरू होने से पहले ही मन की स्लेट से मिटा देना पड़ता। पिता की मौत के बाद घर के हालात जब और बिगड़ने लगे, तब शिखा की चुप्पी अधिक बढ़ गयी। हमेशा ख़ामोश रहने वाली शिखा को समाज में एक अच्छी, शालीन लड़की माना जाने लगा। दिल में उसके यही आरजू रहती कि मेरी शादी एक ख़ूबसूरत नौकरी-पेशा आदमी से ही हो। पड़ोस के एक नौकरीदार लड़के को देखती, तो ख़याली-पुलाव पकाती कि काश, माँ मेरी शादी इससे कर देती। पर माँ के सामने यह बात ज़ाहिर करना न तो इतना आसान था और न ही शिखा कभी कुछ कह पायी।

अपने मन का साथी पाने के मामले में हम सबमें से बस एक राधा को ही सफलता हासिल हो सकी, वह भी इसलिये कि उसे अपने पिता का पूरा सहयोग मिला। यों राधा जब जवान हो रही थी, तब उसके भीतर बस यही धुकधुकी बनी रहती कि रास्ते चलते ऊँची जाति का कोई पुरुष उसे कुछ कह या छेड़छाड़ न कर दे; इसलिये स्कूल कभी अकेली नहीं जाती थी। गाँव के एकमात्र दलित-परिवार को घर की बेटियों की जवानी से जुड़ा यह नया बोझ भी बाकी सब कष्टों और अपमानों के साथ स्वीकारना पड़ा। यही डर बना रहता था कि बेटियों के साथ किसी भी तरह की ज़्यादती या ऊँच-नीच हो गयी, तो पहले से मौजूद बदहाली और भी बदतर हो जायेगी।

कक्षा सात तक पहुँचते-पहुँचते राधा का दिल शादी और ससुराल के ख्वाबों में उलझने लगा। साथ की सहेली किरण ने एक बार स्कूल में एक लड़के से राधा की शादी की बात चलानी शुरू कर दी, तो राधा को माँ ने खूब मारा और फटकारा। वैसे तो पिता की हर बात पर बचपन में रो पड़ने वाली राधा बाप से बहुत भयभीत रहती थी, लेकिन शादी-ब्याह के विषय में उनके खुले विचारों का उस पर गहरा असर पड़ा। पिताजी अक्सर कहा करते थे: "शहर में तो लड़कियाँ अपनी पसन्द से शादी करती हैं। अगर कभी कोई ऐसी बात हो तो घर में ज़रूर बता देनी चाहिये।"

पता नहीं माँ के साथ इतनी मार-पीट करने वाले पिता बेटियों के ब्याह के मामले में इतने उदार-हृदय कैसे बन गये! पर उनके प्रभाव से घर में ऐसा माहौल तो बन ही गया कि लड़कियाँ अपनी पसन्दगी-नापसन्दगी पिता को खुल कर बताने की हिम्मत जुटा पायीं। यही नहीं, इसी माहौल की वजह से एक बार जब उसके भैया की शादी के मौके पर पिता ने टी.वी. और साइकिल की माँग रखी तो राधा झट बोल पड़ी, "ठीक है, हम दोनों बहनों के लिये भी दो टी.वी. और दो साइकिल रख देना। बेटे की शादी में लोगे, तो बेटियों की शादी में देना भी तो पड़ेगा?"

एक बार जिस लड़के से राधा की बात चली, वह उसे बहुत अनाकर्षक लगा। राधा ने शादी से इन्कार कर दिया। हाँ, कुर्मी जाति का एक लड़का उसे काफी भाया। सोचती कि अगर अन्तर्जातीय-विवाह पर पाबन्दी न होती तो उस ही से शादी करती। पर वह यह भी जानती थी कि जाति की खाइयों का पटना इतना आसान नहीं है, इसलिये घर में किसी को इस बात का अहसास ही नहीं होने दिया। कुछ ही दिनों बाद दूर के एक रिश्तेदार के लड़के पर राधा का दिल आ गया और उससे बहुत लगाव हो गया। उस ही से बाद में शादी भी की। पर अगर बाप और भाई साथ न देते तो राधा यह लड़ाई अपने घर में कतई नहीं लड़ पाती।

शायद जाति-भेद के अन्यायों के खिलाफ़ उनकी निजी लड़ाई ने ही राधा के पिता को इतना दबंग बना दिया था कि शादी-ब्याह से जुड़ी कुछेक सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ कर बेटियों को अपने मन का जीवन-साथी चुनने का हक़ दे सके। पर सवर्णता के बोझ तले दबे पल्लवी के माता-पिता को तो समाज ने इस बात तक के लिये नहीं बख़्शा कि वह बेटे के हाथ उसके रजस्वला होने से पहले पीले नहीं कर सके।

पल्लवी नौ साल की थी जब उसके बड़े भैया और दीदी का ब्याह हुआ। इसके बाद घर के सारे कामों की ज़िम्मेदारी उसी के नन्हें कन्धों पर आ पड़ी। कम दहेज ले जाने के कारण दीदी को ससुराल में जो ताने सुनने पड़ रहे थे, उन्होंने पल्लवी के मन में हज़ारों डर भर दिये। जब कुल जमा बारह साल की हुई, तो पड़ोसियों की टोका-टाकी चालू हो गयी: "लड़की सयानी हो रही है, इसका ब्याह क्यों नहीं कर देते?"

लगभग इसी समय की बात है। एक दिन स्कूल से लौटकर आई, तो अपने कपड़ों पर खून के दाग़ देखे। सोचा, कहीं पेट में फोड़ा या कैन्सर तो नहीं हो गया? अम्मा को बताया, तो बोलीं, "अबकी बार जाना, तो उसी खून से तीन बिन्दी बनाना और आधी बिगाड़ देना। यह टोटका होता है। इससे ढाई दिन ही माहवारी आयेगी। अब तुम बड़ी हो गयी हो।"

....तीन दिन बाद माँ ने बाल धुलवाये, और कहा, "हर बार ऐसे ही करना।"

और भी कई पाबन्दियाँ लग गयीं—माहवारी के समय खाना मत बनाना, पूजा मत करना, तुलसी पर जल मत चढ़ाना, वगैरह-वगैरह। पर इतना होने पर भी चैन कहाँ? माहवारी शुरू होने से पहले शादी न हो पाने का ताना भी अम्मा को खूब मिलने लगा। एक बार खेत में चरती एक बकरी को पल्लवी की अम्मा ने बाँध लिया। जिस औरत की बकरी थी, उसने लड़ते-लड़ते माँ को सुना डाला: "धरम के पैर तक तो पूज नहीं पायीं, बकरी बाँधकर ताव दिखाती हैं!"

इस घटना के दो-चार दिनों में ही पल्लवी के बाबूजी लड़का देखने निकल पड़े। इस तरह पल्लवी और चाँदनी की शादियाँ तेरह-चौदह साल की कच्ची उम्र में ही हो गयीं। हममें से जिनकी शादियाँ इतनी जल्दी नहीं हुईं, वे भी काम के बोझ और अनेक पाबन्दियों में क़ैद हो गयीं। बचपन के दुख-दर्द और किशोरावस्था के बन्धन हम सबके जीवन में इस तरह गुँथ गये थे कि डायरी लिखते वक़्त अक्सर हमारी समझ में यही नहीं आता था कि कौन-सा पल हमारे बचपन में आता है और कौन-सा जवानी में?...हाँ, यह ज़रूर है कि सपने जो चटखने शुरू हुए और किरच-किरच बनकर भीतर समा गये, उनकी टीसों ने हम सबको जवानी में ही ज़्यादा रुलाया।

000

काहे को ब्याहे बिदेस...?

एक बार पति ने हमें बहुत मारा था। मन हुआ कहीं जाकर अपनी जान दे दें...आँख बाँधकर बस के नीचे लेट जाएँ, लेकिन ये हमें रास्ते से ज़बरदस्ती खींच लाये...मन कहे इस ज़िन्दगी का क्या करेंगे, जहाँ प्यार की जगह लड़ाई-झगड़ा और मार-पीट मिल रही है। फिर मैं यह सोचती कि अम्मा को तो दादा लाठी से मारते थे। फिर भी कैसी मज़बूत हैं—मार खायीं, तब भी काम का बोझ ढोती रहीं और जान देने की कभी न सोचीं। मैं तो यह सब झेलने में काफ़ी कमजोर थी। यह भी सोचती कि औरतें काम करने के लिये ही तो होती हैं। मार पड़ती है तो क्या? औरों के मुँह से यही सुनती आयी थी कि पति परमेश्वर होता है। वह कुछ भी कर

सकता है। इसलिये मैं भी चुप हो गयी। ...ससुराल में एक अच्छी बहू बनकर रहने की कोशिश करने लगी।

—राधा की डायरी से

कभी-कभी यह सोचकर तकलीफ़ होती है कि जो सपने हमने देखे थे उनका एक अंश भी पूरी तरह जीने को नहीं मिला। शादी होने के साथ ही किशोरावस्था में देखे हमारे ढेरों ख़्वाब ताश के महलों की तरह बिखरने लगे। हमारे हिस्से में भी वैसे ही बोझ, अपमान और दुख आये, जिन्हें हमने अपनी माओं को झेलते देखा था। ज़माने ने इतना तो पहले से समझा दिया था कि ससुराल ही हमारा घर होगा, लेकिन कभी यह आभास न दिलाया था कि वहाँ का माहौल तथा हालात हमारी उम्मीदों से इतने अलग होंगे! जब हम मायके का साया छोड़ने को हुए, उस वक़्त यही चिन्ता सालती रही कि हम चले जायेंगे, तब कौन करेगा सारे काम-काज? कौन बँटायेगा हमारी थकी हुई माओं के हाथ? मालूम था कि दुनिया की निगाहों में हमारा असली घर, माँ का घर नहीं बल्कि ससुराल है। फिर भी बिदाई के समय हमें फ़िक्र मायके की ही लगी रही कि हमारे पीछे यहाँ देखभाल करने वाला कौन होगा! मगर ससुराल पहुँचते ही नये बन्धनों, नियमों, और ज़िम्मेदारियों के बोझ तले इतना दबे पाते गये खुद को कि रह-रह कर मायके की यादें टीस बनकर उठती थीं। बचपन के कष्ट, शादी के पहले की जाने वाली रोक-टोक, और काम के दबाव; सब ससुराल में आकर छोटे और आसान दीखने लगे।

कहाँ तो हमारे उड़ान भरते दिलों ने पति के रूप में प्रेमी और जीवन-साथी पाने की कल्पनाएँ की थीं... पर जब हकीकत से आँखें मिलीं, तो पता चला कि ससुराल में तो हमको केवल गुलाम बनाकर लाया गया है। और गुलाम भी कोई मामूली नहीं, बल्कि ऐसी जिससे यह उम्मीद रखी जाती है कि वह दहेज में मोटी रक़म और सम्पत्ति लाकर परिवार की शान और हैसियत को बढ़ायेगी। सात ज़िन्दगियों की दास्तानों को सुनते-सुनाते वक़्त हर बार यही लगा कि बीवी-बहू तो ससुराल के भीतर एक ऐसी दासी बनकर दाख़िल होती है, जिसे ससुराल वाले जब चाहें इज़्ज़त-आबरू के नाम पर परदे में कर दें और जब मन हो, तब दुनिया के सामने मार-पीटकर नंगा कर दें। न तो वह अपनी मरज़ी के मुताबिक़ पहन-ओढ़ सकती है, न कहीं आ-जा सकती है, न अपना दुख-सुख अपने घरवालों के साथ बाँट सकती है। और, रात-दिन अपना तन-मन घर में झोंकने के बाद भी न तो हक़पूर्वक़ भर-पेट खाना माँग सकती है, न ही बीमार पड़ने पर दवा-दारू की उम्मीद कर सकती है। पूरी ज़िन्दगी में उसके हिस्से आता है, तो बस काम और केवल काम। उसके अलावा अगर वह कुछ हासिल कर पाती है, तो समाज की वजह से नहीं बल्कि समाज से लड़ कर—सिर्फ़ अपने दम पर।

000

हमेशा खुश रहने वाली मधुलिका को जब पहली बार एक लड़का देखने आया और नापसन्द करके चला गया, तो उसके आत्मसम्मान को बहुत ठेस लगी। अगर पता होता कि वह ऐसा करेगा तो उसके 'ना' करने के पहले खुद ही कह देती कि लड़का उसके मन का नहीं।

फिर कई जगह बात चली और अन्ततः हरदासपुर के एक लड़के से शादी तय हो गयी। वह खेती करता था। ससुर खत्म हो चुके थे। इस घर में शादी करने का मन तो न पिताजी का था न मधुलिका का, लेकिन दस बीघा खेत था। दहेज की कोई माँग न होने के कारण बात यहीं पक्की हो गयी। मधुलिका बहुत रोई। बार-बार लगे: "कच्चा घर है, ससुर नहीं हैं, खेती-किसानी वाले हैं, नौकरी-चाकरी भी नहीं है.....हमारी तो कोई सुनने वाला होगा नहीं...कैसे झेलेंगे?"

मधुलिका की शादी के पाँच दिन पहले ही भाई की शादी हुई थी। भाभी के लिये खूब सामान गया था—सात साड़ी थी, सोने की झुमकी थी। मधुलिका ने सोचा—मैं भी नौकरी वाले की लड़की हूँ, मुझे भी यह सब सामान मिलेगा। पर जब बक्सा पहुँचा तो सिर्फ एक जोड़ी कान के टॉप्स, पायल और दो साड़ियाँ थीं। पिताजी को यह अपमान बर्दाश्त नहीं हुआ। उन्होंने सामान फेंक दिया और बोले, "शादी नहीं करेंगे, बारात घुमा ले जाओ।"

द्वारचार में मधुलिका ने भी पति को देख लिया था। अपने से दस-बारह बरस बड़े! उसे भी लगा कि इनसे हमारी शादी न हो तो ही ठीक है। मन करे कि दूसरे दरवाजे से भाग जाये। सुबह दो बजे तक झगड़ा होता रहा। बदनामी होगी, अन्ततः इस डर से पैर पूज दिये गये और बारात भी तुरन्त बिदा हो गयी।

ससुराल गयी, तो मधुलिका के ऊपर काम का बेइन्तिहा बोझ था—कच्चे घर की लिपाई-पुताई, खेत से लेकर घर तक का पूरा काम, और सास-ननद के कभी न थमने वाले ताने। ऊपर से पति को जुआ खेलने से फुरसत नहीं! एक दिन शादी में मिली हजार रुपये की घड़ी को पति जुए में हार आया, तो खूब झगड़ा हुआ। पति ने मार-पीट तो कभी नहीं की, पर जुए को लेकर लड़ाई आये दिन होती। मधुलिका को मायके की बहुत याद आती, जब-जब यह गीत सुनती—

सुखवा का मन रहल, दुखवा में बीतले दिनवा

(मन बहुत था कि सुख में रहें पर दिन दुख में ही बीत रहे हैं)

पर इतना सब होने पर भी मधुलिका ने अपने ससुराल की कोई बात कभी मायके में नहीं बतायी, क्योंकि उसने अपनी बुआ की ज़िन्दगी को करीब से देखा था।

बुआ पचास साल से मायके में ही रहती हैं। जवानी में यही बुआ जब खाते-पीते घर से ससुराल पहुँची, तो वहाँ बहुत गरीबी थी। ठाकुरों का ज़ोर था और ससुर, जेठ, जेठानी सब मज़दूरी करते थे। बुआ को यह सब तकलीफ़ देता था। एक दिन बुआ के हाथ से खाना ठीक नहीं बना। सास ने झगड़ा किया, तो बुआ ने भी सुना दिया: "जो तुम्हारे यहाँ का खाना है, वह हमारे यहाँ का दाना है।"

....और बुआ गुस्से में मायके चली आयीं, फिर कभी ससुराल न लौटने के लिए। बुआ के शरीर में जब तक दम था, मायके में खूब मान-सम्मान हुआ। घर भी दे दिया गया। पर जबसे शरीर थका और हड्डियाँ टूटीं, तब से कोई खाने को भी नहीं पूछता। मेहनती, जीवट और आत्मसम्मान से भरी बुआ में मधुलिका को बार-बार अपनी झलक दीखती। पर उनका कष्ट महसूस करती, तो यही लगता कि बुआ ने ससुराल का घर न छोड़ा होता तो आज यह दिन नहीं देखना पड़ता। तभी अपने ससुराल के दुख मधुलिका ने मायके में कभी नहीं कहे।

इसी तरह संध्या के ससुराल में दहेज को लेकर बहुत तानाकशी हुई। तब उसने खून के घूँट पी लिये पर मायके में किसी को मनक तक नहीं पड़ने दी, क्योंकि भाइयों को दुखी नहीं देख सकती थी। पिता के न रहने पर संध्या के बचपन की दुनिया पूरी तरह से अपने भाइयों के इर्द-गिर्द सिमट गयी थी। शादी के बाद भी वह यही सोचती—“मुझे चाहे कितने ही दुख उठाने पड़ें, भाइयों को मेरी वजह से कभी कोई कष्ट न हो।”

...पर कैसा विचित्र है मायके और ससुराल के ताने-बाने में उलझा हमारा यह जीवन! कभी मायके के घर ने अपना बन कर गले लगाया, तो कभी ससुराल के घर ने। और, कभी दोनों घरों के होते हुए भी यही लगता रहा कि कहीं कोई छोटा-सा भी ऐसा कोना या ठिकाना नहीं, जिसे हम सचमुच अपना कह सकें।

000

राधा के हिस्से में भी मधुलिका की तरह गरीबी और जुए से जुड़े गम भरपूर आये। संध्या और मधुलिका की तरह ज़बान पर ताला लगाकर सब कुछ सहन करने के सिवाय उसे भी दूसरा कोई रास्ता नहीं सूझा। राधा जिस गाँव में ब्याह कर आयी थी, वहाँ का माहौल मायके से अलग था। पीहर में तो सिर्फ अपना परिवार अछूत कहलाता था, पर यहाँ पासी और रैदास पास-पास रहते थे। इसलिए अछूत होने का अहसास यहाँ थोड़ा कम हुआ। दिन-रात की छुआछूत से छुटकारा मिला, लेकिन क्या इतना आसान था उस 'अछूत' शब्द के गहरे घावों से निजात पाना! यहीं शिद्दत से यह भी महसूस किया कि कितनी गरीबी है इन जातियों में। इसी गरीब तबके के जवान मर्द जुए व शराब की चपेट में सबसे ज़्यादा आते हैं। गाँव की लगभग सारी मशीनें—ट्रैक्टर, थ्रेशर, बोरिंग, आटा पीसने की चक्की इंजन, गुड़ बनाने वाली मशीनें—मौर्य लोगों के हाथों में थीं। इन्हीं साधन-सम्पन्न मौर्यों के पास सारा पैसा भी था। जब मशीनें नहीं थीं, तब सबकी रोज़ी-रोटी किसी न किसी तरह चल जाती थी। पर जैसे-जैसे मशीनों की संख्या बढ़ रही है, वैसे-वैसे गरीब और उपेक्षित जातियों में भुखमरी के साथ-साथ जुआ, शराब और झगड़े भी तेज़ी से बढ़ते जा रहे हैं।

अपने होने वाले पति की सूरत पर राधा जिस समय रीझी थी, उस समय उसे तनिक भी आभास नहीं था कि यह कोई काम-धन्धा नहीं करते। जो व्यक्ति स्वयं अपना खर्च नहीं चला पाता था, वह नयी दुल्हन का कहाँ से झेलता? ससुर और बड़े देवर नामी शराबी और जुआरी थे। पति का यही बहाना था कि हम बाहर काम करके जो कुछ भी कमायेंगे, उसे बाप और भाई जुआ-शराब में गँवा देंगे। घर में पन्द्रह बीघा खेती होने के बावजूद हालात ऐसे थे कि कभी-कभी चूल्हा तक न जलता। सारी खेती, जुआ खेलने के लिए गिरवी रख दी जाती।

शुरुआत के दिनों में राधा से बहुत कुछ छुपाया भी जाता था। सास को डर था कि यदि घर की सारी स्थितियाँ नयी बहू को पता चल गयीं, तो कहीं वापस मायके न लौट जाये। उन्हें लगता कि बहू अगर मायके चली जायेगी, तो उनकी इज़्ज़त मिट्टी में मिल जाएगी। पर यह नहीं सोच पायीं कि अकेली राधा पर ही इस इज़्ज़त को ढोने की जिम्मेदारी क्यों? वह भी ऐसी इज़्ज़त जिसका ससुर और देवर रोज़ तमाशा बनाते थे। शादी को छः माह ही हुए थे कि राधा के दहेज में दिये गये कुछ बर्तन

गिरवी रख दिये गये। राधा को पति ने उस समय बताया, जब कुछ बरतन छुड़ाकर वह वापस लाने वाले थे। सास, बेटे से इस बात पर झगड़ पड़ी कि बहू को क्यों बताया? बोलीं—“अगर उसने मायके में कह दिया, तो मेरी इज़्जत चली जायेगी।” फाँसी लगाने को तैयार हो गयीं।

पति ने राधा को कसम दिलाई कि मायके में किसी से इस घटना का जिक्र न करे। राधा ने तो किसी से कुछ नहीं कहा, पर दूसरे लोग बार-बार उसे यही सलाह देते कि यहाँ की हालत ठीक नहीं। तुम्हें कभी आराम नहीं मिलेगा। इससे अच्छा तुम वापस अपने मायके चली जाओ।

राधा को पति का खूब प्यार-दुलार मिला। पर शक्की बहुत थे—शायद इसलिये कि स्वयं उनके सम्बन्ध गाँव की दूसरी लड़कियों से रहा करते थे। अगर राधा इस पर कुछ बोल देती, तो भयंकर मार-पीट होती और वह किसी पुरुष के साथ ज़रा-सी भी बात कर लेती, तो हंगामा खड़ा हो जाता। राधा अक्सर यही सोचती: “शादी क्या की, हमने तो अपने शरीर पर पति और ससुराल का पूरा कब्ज़ा करा दिया!”

अक्सर लोग कहा करते हैं कि औरतों को परदे की ओट में क़ैद करके सिर्फ़ रईस व सफ़ेदपोश लोग रखते हैं, क्योंकि ग़रीब के घर की औरत यदि परदे में बैठ जाये, तो घर की रोज़ी-रोटी ही न चले। पर हमारे अनुभवों ने हमें सिखाया है कि यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है। सच यह है कि खानदानी इज़्जत-आबरू बनाये रखने के नाम पर सफ़ेदपोश परिवारों की बहू-बेटियों के पाँवों में बहुत सारी बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं, मगर हमारे ग़रीब और दलित-समाज में भी ज़बरदस्त परदा है—चाहे हिन्दुओं में देखें चाहे मुसलमानों में। तभी तो राधा की तरह ही ससुराल के कड़े परदे ने चाँदनी के संघर्ष और भी कठिन बना डाले।

000

चाँदनी का पहला निकाह तेरह की उम्र में हुआ। तब उसकी माहवारी शुरू भी नहीं हुई थी। यह पहला शौहर वही लड़का था, जो कभी चाँदनी के इश्क़ में दीवाना था। चाँदनी को लगता था कि सुख ही सुख होंगे शादी के बाद—मेला, टॉकीज़, रिश्तेदारों में आना-जाना, और भी न जाने क्या-क्या! लेकिन ‘वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है।’

ससुराल में भी हथकरघे का काम था—पाँच-छः धोतियाँ हर रोज़ बुननी पड़ती थीं। परदा बहुत सख्त था। चाँदनी को यह तो मालूम था कि ससुराल में मुँह छिपाया जाता है। पर अपने ही रिश्तेदारों से मुँह छिपाने की बात हज़म नहीं होती थी।

सास कहतीं, “मुँह छिपाओ।” पर वे जितना कहतीं, चाँदनी उनकी बात उतना ही अनसुनी कर देती। चाँदनी ने तो अपनी अम्मा से इस्लामी-मज़हब के मुताबिक सीखा था कि औरत और मर्द के बीच आँख का परदा होता है, चेहरे का नहीं। पर पति नाराज़ होकर कहते कि जो अम्मी कहा करे, वही किया करो।

चाँदनी जवाब देती, ‘जो हमारे हैं, वे तुम्हारे भी। मैं जिनके सामने छुटपन में नंगी रही, उन्हीं से मुँह कैसे छिपाऊँ?’

ससुराल में इस पर ज़िद की, तो बात कुछ ज़्यादा ही बढ़ गयी। अम्मा और सास का झगड़ा हो गया।

पति की मार-पीट भी बहुत जल्द शुरू हो गयी। वह चाहते थे कि चाँदनी के पिता उनके लिये अलग से दूकान कर दें, लेकिन चाँदनी के ग़रीब अब्बू के लिये यह नामुमकिन था। बोले, “मेरी और बेटियाँ भी तो हैं। उनके लिये क्या करूँगा?”

पिता के इस इन्कार से चाँदनी पर होने वाले जुल्म और बढ़ गये। भर पेट खाना न मिलता। सास प्लेट में ज़रा-सी सब्जी देती और कोई न देखता होता, तो उसमें भी पानी मिला देती। कभी-कभी चाँदनी पति से खुशामद करती: “तुम्हारी अम्मी तुमको ज़्यादा खाना दे देती है। तुम कभी-कभी हमारे लिये ज़रा-सा छोड़ दिया करो। हमारा पेट नहीं भरता।”

जब बीमार होती तो दवा भी न मिलती—बस, काम ही काम। कोख में पल रहे बच्चे की तो किसी को परवाह ही नहीं थी। निकाह का एक साल होते-होते बेटा पैदा हो गयी। बेटा के जन्म से आठ दिन पहले चाँदनी बहुत पीटी गयी थी। बेटा पैदा हुई है, चाँदनी ने जब यह जाना, तब उसका दिल और भी बैठ गया।

घर में सब बेटे की आस लगाये बैठे थे। बेटा के होते ही चाँदनी पर ग़म के पहाड़ टूट पड़े। न खाना मिले, न आराम। चौदह साल की उम्र में माँ बनी चाँदनी का शरीर जवाब दे गया। जब बहुत बीमार हो गयी, तो अम्मा-अब्बू घर ले आये। पूरे डेढ़ महीने इलाज कराया। जैसे ही ठीक हुई, पति पहुँच गये और चाँदनी को धमकाने लगे: “चलना हो तो अभी चलो।”

पर अभी तो चाँदनी की दवा चल रही थी। वह जाने को तैयार नहीं हुई। बोली, “मैं तुम्हारी कौन हूँ? अम्मी की बात मानते हो, उन्हीं के पास रहो। मेरा और बेटा का खर्च कौन उठायेगा? बीमार हो जाऊँगी, तो दवा कौन करेगा?”

अब्बू भी रोने लगे। दामाद से बोले, “तुमने हमारे साथ जो सुलूक किया है, वह कभी नहीं भूल सकते।”

दामाद ने तेज़ होकर कहा, “ठीक है, तलाक़ ले लो।”

यह बात पाँवों के नीचे से ज़मीन खिसका देने वाली थी। यह घटना जिस दिन घटी, चाँदनी को एक हाथ और एक पैर में फ़ालिज मार गया। आँख की रोशनी भी कम हो गयी। चार हज़ार रुपये लगाकर अब्बू ने कानपुर में इलाज हुआ। तब दोबारा खड़ी हुई। जैसे ही ठीक हुई, शौहर फिर लेने आ गया।

चाँदनी ने आग्रह किया, जो पैसा दवा में लगा, वह अम्मा को दे दो।”

पति ने जवाब दिया, “कैसा पैसा? हम एक धेला नहीं देंगे। चलना है तो चलो। मैं तो सबके समझाने पर चला आया, वरना मुझे तो तलाक़ देना है।”

चाँदनी को लगा यह शौहर है या दुश्मन। तय कर लिया कि अब नहीं जाऊँगी। साथ जाने पर अगर कहीं दूसरा बच्चा ठहर गया, तब क्या होगा?

अब्बू-अम्मा बेहद नाराज़ और दुखी थे। पंचायत हुई और तलाक़ हो गया। छः माह की दूध पीती औलाद को अब्बू ने अपने ही गाँव में बेटी के हाथों से छीनकर तलाक़ देने वाले को दे दिया और कहा—“देखना, मैं चाँदनी की शादी तुम्हारी दूसरी शादी होने से पहले करके दिखाऊँगा।”

उन्होंने अपनी ज़िद पूरी की। अपनी बिटिया के बिछड़ने के ग़म में पागल चाँदनी ने बहुत मिन्नतें कीं, “मेरी शादी न करो, मैं बनाई करके अपना ख़र्च चला लूँगी।”

पर किसी ने एक न सुनी। छः ही महीनों में दूसरा निकाह रघुनाथपुर गाँव में हो गया।

वक्त और शरीर की मार से डरी-सहमी चाँदनी इस नयी ससुराल में चली आयी। पति को पहली शादी और बेटी के बारे में मालूम तो था; पर सख्त हिदायत थी कि बेटी का नाम भी ज़बान पर लायीं तो ठीक नहीं होगा। बेटी का दर्द सीने में छिपाकर चाँदनी ने होंठ सी लिये। डरती थी—अगर यहाँ भी तलाक़ हो गया, तो कहाँ जाऊँगी। इसलिये नये ससुराल के सारे जुल्मोसितम भी बर्दाश्त करने के लिये मन को तैयार कर लिया।

000

गरिमा, संध्या, शिखा, और पल्लवी के परिवार राधा और चाँदनी के माता-पिता की अपेक्षा अधिक साधन-सम्पन्न थे। इसलिये इनके जीवन में जो कष्ट और दबाव आये, उनमें रोज़ी-रोटी और भूख का दर्द कुछ कम, और सफ़ेदपोशी और जातिगत मान-मर्यादा का बोझ कुछ अधिक था। विधवा माओं की बेटियाँ होने की वजह से गरिमा, संध्या और शिखा ने जो पीड़ाएँ सहन कीं, उनमें उनकी माओं की तकलीफ़ों और छटपटाहटों के रंग भी अच्छी तरह घुल गये थे...

गरिमा एक ओर तो सजने-सँवरने की कल्पनाओं में गोते लगाती हुई रोज़ अपना मनचाहा पति पाने की प्रार्थना कर रही थी। दूसरी ओर पड़ोसियों और रिश्तेदारों के दबाव से परेशान माँ को देख कर उसे लगता कि वह परिवार के लिये एक भारी बोझ बन गयी है। एक बार नानी ने सुना भी दिया: “मोहन (पिता) तो शराब पीकर चले गये और हम लोगों की जान आफ़त में डाल गये।” माँ के पास नक़द पैसा न होने के कारण दहेज देने की स्थिति तो थी नहीं, इसलिये नाना, मौसा, माँ और स्वयं गरिमा यही मनाते कि किसी तरह शादी हो जाये तो चिन्ता मिटे।

आख़िर मौसाजी ने एक जगह बिना दहेज के शादी तय कर दी—लड़का सीतापुर में आँख के अस्पताल में नौकरी करता था। पर तिलक के चार दिन पहले पता चला कि वे लोग कुलीन ब्राह्मण नहीं हैं। अतः शादी टूट गयी। इसके बाद मौसा ने उन्नाव जिले के सुजानपुर गाँव में ब्याही अपनी एक बहन के चौथे बेटे से गरिमा की बात पक्की कर दी। नाना बेमन से तैयार हुए, क्योंकि परिवार झगड़ालू किस्म का माना जाता था। गरिमा की जेठानी के झगड़े चर्चित थे। मौसा-मौसी ने इत्मीनान दिलाया कि लड़का बहुत अच्छे स्वभाव का है, पर पुरानी रिश्तेदारी के कारण गरिमा यह भी जानती थी कि ग़रीबी की वजह से सुजानपुर गाँव के लोगों की उसके अपने गाँव मनोहरपुर में कोई ख़ास इज़्ज़त नहीं थी। गरिमा को तो सुजानपुर के नाम से चिढ़ थी। उसे लगा—“मेरे तो सपने टूट गये। जैसे बाकी लड़कियाँ आती हैं और साबुन, मंजन तेल मायके से ले जाती हैं। किसी को कपड़े तक ढंग से नहीं मिलते हैं। मेरी भी यही दशा होने वाली है।”

जो भी सुनता, यही कहता: "हाय, सुजानपुर में बड़े दबंग लोग रहते हैं। लड़की को इतनी दूर डाल रही हो! इसे तो रोटी भी खाने को नहीं मिलेगी।"

दस बीघा खेत पर शादी तय हुई। बरिच्छा (सगाई) के लिये जौ बेचना पड़ा। तिलक में सामान तो गया, पर नक़द पैसा थोड़ा होने से सास को काफ़ी नाराज़गी हुई, जो वह बरसों तक बात-बात में अपने तानों और झगड़ों के माध्यम से ज़ाहिर करती रही। पर गरिमा के घर में पहली शादी थी, इसलिये सारी रस्में धूमधाम से निभायी गयीं। हाँ, माँ के आँसू उसी दिन से बहने लगे, जिस दिन से गरिमा की शादी तय हुई। जिस बेटी के साथ ने इतनी मुसीबतें झेलने के लिये शक्ति दी थी, उसके दूर चले जाने की कल्पना मात्र से वह सिहर उठती थीं।

शादी हो गई। शुरू-शुरू में ससुराल में गरिमा हमेशा डरी ही रहती। कुछ तो नये परिवेश की वजह से, बाकी शायद अपने ही पिता द्वारा माँ के साथ की गयी मार-पीट की अमित यादों ने दिल को दहला रखा था। खाने में ज़रा सा नमक भी तेज़ हो जाये, तो लगे कि बस, अब मार पड़ेगी। पर मार कभी नहीं पड़ी। मायके की अपेक्षा ससुराल में औरतों पर बन्धन कम थे। परदा भी कम था, लेकिन पति अपने आलसी स्वभाव के कारण कुछ ख़ास कमा नहीं पाते थे। इसलिये घर में आये दिन सास और पति के बीच झगड़े भी होते, जिसमें सास की गन्दी गालियाँ हमेशा गरिमा और उसकी माँ को पड़तीं। गरिमा को यह सब झकझोर डालता। पर उसे हमेशा इस बात से बेहद तसल्ली मिलती कि पति के साथ उसका रिश्ता बहुत अच्छा है।

"मेरी खुशी में खुश और मेरे दुख में दुखी"—ऐसा पति पाकर गरिमा सन्तुष्ट थी। बार-बार यही मनाती: "चाहे मेरा सब कुछ खो जाये, पर यह रिश्ता कभी न खोये।"

000

प्यार के रिश्तों के बारे में अपने मन में दबी बातें कहने-बाँटने के लिये जब अलफ़ाज़ ढूँढने लगो, तब कहीं यह भी लगता है कि जब तक किसी रिश्ते से ज़्यादा उम्मीद न रखो, उसमें खुशी पाना तभी तक ज़्यादा आसान होता है। जहाँ प्यार से उम्मीदें बढ़ती हैं, वहाँ तलाश और छटपटाहट, अक्सर दोनों बढ़ती ही चली जाती हैं। शायद इसी वजह से कुम्हराँवा गाँव में ब्याही पल्लवी विवाह के कई सालों बाद भी प्यार ढूँढती रही।

पल्लवी के लिये पहले जो लड़का देखा गया, वह विधुर था। पहली शादी से दो बच्चे थे। दहेज की कोई माँग नहीं थी। पल्लवी शुरू में इसी बात से सन्तोष कर रही थी कि कम से कम खूब कपड़े और जेवर तो मिलेंगे। पर लड़के का फ़ोटो देखा, तो लगा जैसे पिताजी की फ़ोटो हो। जब वह पल्लवी को देखने आया तो खुद भी यही बोला: "यह तो मेरी बेटी की उम्र की है। इसे भला मैं पत्नी के रूप में कैसे स्वीकार करूँ?"

ऊपर वाले का शुक्र कि उसने स्वयं ही ब्याह के लिये 'ना' कर दिया, पर इस शादी का मना होना गाँव में चर्चा का विषय बन गया। लोगों ने सीधे पल्लवी के चरित्र पर ही दोष मढ़ा कि इतनी सुन्दर लड़की को कोई ऐसे ही थोड़े नापसन्द करता है। ज़रूर कोई कारण होगा! अब इसे एक भद्दी गाली के सिवाय और क्या कह सकते हैं कि पिता की उम्र का एक पुरुष जब समझदारी का परिचय

देकर एक कच्ची उम्र की लड़की से विवाह करने को मना करता है, तब भी समाज लड़की में ही खोट देखता है। अतः अगर तरह-तरह के लांछन और सवाल बरसों तक पल्लवी का पीछा करते रहे, तो ताज्जुब कैसा?

इस प्रकरण के बाद उन्नाव जिले में शादी तय हुई। न्यौता भी बँट गया, पर तिलक चढ़ते समय लेन-देन को लेकर काफ़ी झगड़ा हुआ। वर-पक्ष तिलक में दस हजार रुपये चाहता था। इतना नहीं मिला, तो बेइज़्जती पर उतर आया। पल्लवी के भइया और जीजाजी भी नहीं दबे। बात बढ़ गयी। वहाँ से तिलक वापस कर दिया गया।

लड़की का तिलक ससुराल से वापस आ जाये, इससे बड़ी तौहीन और क्या हो सकती थी? आठ दिनों बाद ही शादी होनी थी। अम्मा और बाबू खूब रोयें कि अब क्या होगा? कहाँ करेंगे इसकी शादी? दीदी के ससुर ने अपने नाकारा लड़के से शादी करनी चाही, पर दीदी और जीजा ने बचा लिया। घर में मातम-सा छा गया था। पिताजी तुरन्त दीदी के ससुर और भइया के साथ निकले यह तय करके कि अब तिलक चढ़ाकर ही वापस लौटेंगे। कुम्हराँवा में झट-पट बात पक्की कर दी गयी और पिछला तिलक लौटने के तीन दिनों के अन्दर ही यह तिलक भी चढ़ गया। छः दिनों में ब्याह होना था।

वर-पक्ष ने साफ़ कह दिया—इतनी जल्दी हमसे बहू के लिये कपड़े और ज़ेवर नहीं बन पायेंगे। एक सूती साड़ी और नथ में शादी हो गयी, बस।

पहले तो दहेज की कोई ख़ास माँग नहीं थी, पर कलेवा के समय दहेज की माँग भी होने लगी। ससुराल की देहरी पर कदम रखा, तो सबसे पहले सास से यही सुनने को मिला: “शादी तो ऐसे तय की थी, जैसे कोई राजा महाराजा हों। पर दिया कुछ नहीं। बस पीपा भरा दिया।”

पल्लवी की सास उसे सीधे घर की उस कोठरी में ले गयी, जिसमें आधे में तो कन्डा¹ भरा हुआ था और आधे में भूसा²। पल्लवी को भूसे पर पड़े दरे पर बिठा दिया गया। घूँघट उठाकर देखा, तो हर तरफ़ जाला और कूड़ा। कहाँ तो सोचा था कि ससुराल में मेरा छोटा-सा कमरा होगा, जिसमें मैं पति के साथ बैठकर बातें करूँगी, और कहाँ यह कोठरी! घर का माहौल देखकर उस दिन पल्लवी से कुछ खाया तक नहीं गया। भूसे पर ही वहीं सो गयी। रात पति कोठरी में आये, तो सबसे पहले नाम पूछा। फिर छूटते ही कहा, “जहानगंज वाली शादी क्यों टूटी?”

पल्लवी बोली, “भला मैं क्या जानूँ।”

उस पहली रात को इस तरह एक अनजान पुरुष के साथ सोना बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। पल्लवी यह सोचकर बहुत रोयी कि अब रोज़ ऐसा ही होगा। दूसरे दिन कुल एक रोज़ के लिये पति के साथ मायके गयी, फिर ससुराल लौट आयी। शादी से पहले माहवारी हुई थी, फिर नहीं हुई। दाई को दिखलाया, तो पेट में बच्चा निकला। सास को लगा कि कहीं शादी से पहले का बच्चा तो नहीं, जो इतनी झट-पट में ब्याह कर दिया? पल्लवी ने कोई सफ़ाई नहीं दी। ढाई महीने बीते फिर मायके आ गयी।

¹ गाय-भैंस के गोबर से पाथ कर बनाया गया सूखा जलावन, जो लकड़ी की जगह इस्तेमाल होता है।

² गेहूँ आदि की फसल से दाने निकालने के बाद बाकी बचा सूखा चारा, जो जानवरों को खिलाया जाता है।

मायके में पल्लवी को सबके सामने निकलने में झिझक होती। जब तीन महीने मायके में हो गये, तो पति को चिट्ठी लिखी कि मुझे यहाँ से ले जाओ। पर लेने के लिये ससुर आये। अम्मा ने दाल, चावल, रोटी, सब्जी खिलाकर भेजा। ससुर ने वहाँ तो खा लिया, लेकिन ससुराल पहुँचते ही आधे गाँव को सुनाया: “सालों ने पहले पहल दाल-चावल ही खिला दिया। लिफाफा छाप हैं। अरे, पहले दिन तो मेहमान को पूड़ी-सब्जी खिलाये होते! वहाँ तो मेहरी-राज³ है। न कोई परदा है, न कुछ। समधिन् सामने ही मुँह खोल कर बैठी थी और हालचाल पूछ रही थी।”

इतनी यातनाएँ सहने के बावजूद पल्लवी को पति-मिलन की बहुत आस थी, लेकिन पल्लवी की पीठ पीछे न जाने क्या हुआ कि पति ने पास आना ही बन्द कर दिया। हाल-चाल भी न पूछते। दोपहर में जब खाना खाने आते, तो पल्लवी दबाव की वजह से घूँघट मारे रहती। दूसरे समय आते, तो छोटी ननदें वहीं मौजूद रहतीं। मिलने और बात करने के लिये कहीं जगह ही नहीं मिलती थी। पल्लवी से रहा न जाता। एक बार सोचा—“पति शाम को चारा खाँदते हैं। अगर मैं मशीन खींचने लगूँ तो कम से कम नज़र भर देख तो सकूँगी, उनके हाथों को छू तो सकूँगी।”

हुआ बिल्कुल उल्टा। पति पल्लवी के साथ मशीन पर देवर को कर देते और खुद तब तक बाहर बैठे रहते, जब तक मशीन खींचना बन्द न होता। पल्लवी चारा खींचती जाती और अम्मा-बाबू को कोसती जाती कि ऐसे ब्याह से तो अच्छा होता सल्फ़ास खिला देते।

जब पल्लवी से न रहा जाता, तब पति के पास ज़बरदस्ती चली जाती। एक बेटी हो गयी। पति का यह रवैया तीसरे बच्चे के जन्म तक बना रहा। आज पल्लवी सोचती है कि उसके साथ ऐसा मज़ाक क्यों हुआ? ऐसा है यह दुख कि समाज इसे किसी के सामने कहने भी नहीं देता! कौन जान पायेगा वह दर्दनाक ख़ालीपन, जिसे पल्लवी झेलती रही? लोग तो कहेंगे कि अगर पति प्यार नहीं करता होता, तो तीन-तीन बच्चे कैसे हो गये? क्या प्यार केवल शरीर से सम्बन्ध बना लेने से हो जाता है? मानसिक-सन्तुष्टि और दिल की सन्तुष्टि क्या मायने नहीं रखती पति-पत्नी के सम्बन्ध में? तीन बच्चों की माँ बन जाने के बाद भी पल्लवी सालों-साल इतना असन्तुष्ट क्यों महसूस करती रही, इसका कारण वह आज तक खोज रही है।

000

शिखा की माँ को भी अपनी सयानी होती बेटी को ‘अपने घर’ भेजने की चिन्ता जल्दी ही लग गयी। पति को गुज़रे तीन बरस हुए थे। तब तक शिखा पन्द्रह की हो चली थी। बड़ी बहन ने चन्दौसी में एक लड़का बताया। माँ देखने गयी तो पता चला कि लड़का घर का सबसे बड़ा है, पीछे चार छोटे भाई-बहन और हैं। यह सभी भाई-बहन सात बरस से नौ माह के बीच की उम्र के थे। वापस आकर शिखा को बताया कि परिवार ठीक है और लड़का दूकान करता है। जन्मपत्री माँगी गयी। तब पत्नी तो न मिली, यह सूचना जरूर मिली कि बड़ा परिवार है। काम बहुत करना पड़ेगा। माँ ने किसी तरह पैसे व ज़ेवर का जुगाड़ करके शादी कर दी।

³ औरतों का आधिपत्य और दबदबा।

जिस दिन बारात आयी, उस दिन भी शिखा को दोपहर की रोटियाँ बनानी पड़ीं। माँ हाय-हाय करती रहीं कि कम से कम शादी के दिन तो बिटिया को आराम करने दिया होता। शिखा को डर था कि आगे क्या होगा—कहीं ससुराल पहुँचकर दोबारा पिटाई तो शुरू नहीं हो जायेगी? साथ ही यह सोच कर भी बार-बार रुलायी छूटती थी कि माँ, भाई, बहन सब दूर हो जायेंगे।

विवाह के बाद, जिस रात पति से पहला मिलन होना था, उस रात शिखा को एक कमरे में पहुँचा दिया गया। वहाँ दूकान का काफ़ी सामान बोरों में रखा हुआ था तथा एक चारपायी पर पति सो रहे थे। शिखा भी चुपचाप एक बोरे पर बैठी और सो गयी। पति की सहसा नींद टूटी, तो उठे, अपने पास लिटाया और सम्बन्ध बनाने से पहले घर-परिवार के बारे में तमाम बातें कीं। बताया कि किस तरह से उनके साथ घर और समाज में चलना है।

ससुराल के बाकी सदस्यों ने भी हिदायतें देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। शिखा को सभी के पाँव छूने हैं, सिर झुकाकर बैठना है, धीरे से बोलना है, खाना सबसे पूछकर बनाना है, सबका छोटा-बड़ा काम करना है, रात में सास के पैर दबाकर उनकी इजाज़त लेकर ही सोना है....। नये घर में आते ही इतनी सारी हिदायतें! शिखा को डर-सा लगा कि कहीं कुछ गलत हो गया तो पता नहीं क्या होगा!

ससुराल में सबके होते हुए भी शिखा अकेली थी। पति को रोज़मर्रा की गृहस्थी की बातें सुनना बिल्कुल न सुहाता था। घर में परिवार के लोगों के अलावा किसी का आना-जाना भी नहीं था। शिखा सारा दिन काम में लगी रहती, सास और ननद का कभी ख़त्म न होने वाला बड़बड़ाना और शिकायतें सुना करती। केवल पाँच बरस की ननद नीतू ही शिखा की एकमात्र हमदर्द थी। जब काफ़ी परेशान हो जाती, तो नीतू को पैसा देकर पोस्टकार्ड मँगाती और मायके लिखती। माँ से मिन्नतें करती कि बुलवा लो। बहनोई⁴ को भेजकर माँ पन्द्रह दिनों के लिये बुलवा लेतीं, पर पन्द्रहवें दिन कोई न कोई लेने जरूर पहुँच जाता। मायके से लौटते हुए चन्दौसी का चौराहा जैसे ही पार होता, शिखा वापस क़ैद में पहुँच जाती। पति कहते कि मुँह ढँक लो, कोई देख लेगा। घूँघट काढ़ना होता—वह भी एक हाथ लम्बा, और ऊपर से एक चादर!

कई बार शिखा को लगता कि सपने कुछ और थे, मिला कुछ और....। फिर भी जो कुछ मिला, उसे अपनी किस्मत मान कर उसने होठ सिल लिये। क्योंकि जबसे होश सँभाला था, यही जाना था कि अपनी इच्छाओं का गला घोट कर जो औरतें जीना सीख जाती हैं, उन्हीं को दुनिया शालीन और इज़्ज़तदार मानती है....।

शिखा की कहानी ऊपर से तो समूह की बाकी छः डायरी लेखिकाओं की अपेक्षा ज़्यादा आसान लगती है, क्योंकि उसने उस हद तक आर्थिक अभाव नहीं झेले, जितने बाकी चारों ने। शिखा किसी तरह से यह दावा भी नहीं कर सकती है कि वह अपने समाज के हाशिये पर जीवन यापन कर रही थी। पर शिखा ने बाकी सबसे कहीं ज़्यादा जो झेला, वह था मध्यम-वर्गीय दिखावटी-समाज के कायदे-क़ानूनों और खोखले मूल्यों का बोझ! वही इज़्ज़तदारी व मान-मर्यादाओं की घुटन और सब

⁴ माँ की बड़ी बहन के पति; शिखा के मौसिया।

कुछ ज़बरदस्ती ढाँक-मूँदकर रखने का दबाव, जिसके तले वह मायके में पिसती रही! यहाँ ससुराल में वह और भी विकराल रूप धर कर उसका पीछा करने लगा।

000

मातृत्व के दुखा—सुखा...

ससुराल में एक बार तारु की बहू को लड़का पैदा हुआ। उसकी सास ने किसी बात पर नाराज़ होकर चाय के कप में बहू को ज़हर पिला दिया। बहू मर गयी। उसकी माँ ने कुछ हल्ला नहीं मचाया—सास से सुलह कर ली और लड़के को एक गाँव में गोद दे दिया।...हम सोचते थे कि औरत सुहागिन मरती है तो शकुन मानते हैं। जीने से अच्छा ऐसे ही मर जाया जाये। मैंने कई बार मरने की सोची भी, लेकिन बेटी के मोह ने रोक लिया कि मेरे बिना यह लड़की क्या करेगी? क्या जाने क्या हो इसका!

— मधुलिका की डायरी से

मेरी शादी के बाद सास को बेटी हुई। ससुर ने आँगन में खड़े होकर एक भद्दी—सी गाली दी और सास से कहा, "ससुरी, चल। उठ कर गाय लगा। लड़की को पिलाने का दूध क्या तुम्हारे बाप दे जायेंगे?"

मुझे सुनकर बहुत ख़राब लगा कि जब मेरे लड़का पैदा हुआ था, तब तो घन्टों बाद कहीं जाकर नाल कट पायी थी, इस बिटिया के पैदा होने में क्या होगा?

— पल्लवी की डायरी से

माँ बनने के बारे में इतने सालों से बहुत कुछ सुनते आये थे...। मातृत्व हम सबके जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण, और अहम घटना बनकर आया भी पर, कितने सारे अलग—अलग रूपों और ढंगों से! कहीं बच्चे न पैदा होना खुशी लाया, तो कहीं बच्चे का पैदा होना कहर ढा गया। हमारी भिन्न—भिन्न परिस्थितियाँ माँ बनने के सुख को भी अलग—अलग आकारों और परिभाशाओं में बाँधती—पिरोती चली गयीं।

पन्द्रह बरस की पल्लवी शादी के दस महीनों में ही एक बेटे की माँ बन गयी। जिस समय प्रसव—पीड़ा ने ज़ोर पकड़ा, पल्लवी खाना बना रही थी। मदद करने वाला कोई भी नहीं था। चौके में ही बेटा पैदा हो गया। गाँव में ख़बर फैलते ही पड़ोस की औरतें दौड़ी चली आयीं और, आने के साथ एक—एक ने सबसे पहला हिसाब यही लगाया कि बच्चा शादी के कितने महीनों बाद हुआ? पल्लवी को पहली बार समझ में आया कि न तो किसी को यह परवाह थी कि वह माँ बनी, और न ही यह कि उसने कितनी कठिनाई से बेटे को जन्म दिया। दुनिया ने सबसे ज़्यादा अहमियत दी, तो इसी प्रपंच को

कि बच्चा कहीं मायके का तो नहीं! लोगों के भीतर यह शक शायद इसलिए और भी बैठ गया था, क्योंकि पल्लवी शहर की खूबसूरत पढ़ी-लिखी लड़की थी और पति देखने-सुनने में बिल्कुल उल्टा था। यही सोचते सब कि पेट में मायके की औलाद रही होगी। तभी तो बहू के माँ-बाप ने ऐसे निकम्मे लड़के के साथ झट ब्याह दिया।

सर्दियों के दिन थे। सुबह के वक़्त लगभग सात बजे बच्चा पैदा हुआ था और नाल काटने के लिए धनकुन⁵ दोपहर दो बजे पहुँची। तब तक पल्लवी और बच्चा, दोनों वैसे ही पड़े रहे। सास ने कहा कि बच्चे को मायके से आया कपड़ा ही पहनाते हैं। सो तीन माह बाद, जब माँ ने कपड़े भेजे तब कहीं जाकर बच्चे को नया कपड़ा पहनाया गया। सास दिन भर बच्चे को गोद में लिए बैठी रहती, ताकि घर के सारे काम पल्लवी को ही निबटाने पड़ें। जब दूध पिलाने का समय होता तभी बेटे को कुछ पलों के लिये माँ के हाथों में थमा दिया जाता, बस! बेटा होने की वजह से बच्चे की तो पूरी देखभाल की गयी, पर पल्लवी की कोई कदर नहीं हुई। ग़नीमत थी तो यही कि पहली सन्तान ने बेटे का रूप धरा। अगर कहीं बेटी हो जाती, तो पल्लवी कदाचित ज़िन्दा न बचती।

बेटे के बाद एक बेटी और फिर एक बेटे का जन्म हुआ। एक ओर पति से लगातार बनी हुई दूरी, और दूसरी ओर तीन बच्चों का पैदा होना। पल्लवी के जी को बराबर कचोटता रहता कि हे भगवान, यह भला कैसा रिश्ता है? दिल की यह कसक अनबहे-आँसू बनकर आँखों की कोरों पर हरदम सूखती और चुभती-सी रहती।

000

पल्लवी का जल्दी माँ बनना अगर दुनिया को नहीं सुहाया, तो शादी के तीन साल बाद राधा को उठते-बैठते यही सुनने को मिलता: "हाय, लगता है कि इसे तो बच्चा ही नहीं होगा!"

परिवार की औरतें ताना देतीं: "यह पढ़ी-लिखी है, बच्चा रोकने के लिये ज़रूर कुछ खाती होगी!"

और जब पेट में बच्चा ठहरा, तो खाना-पीना भी ठीक से नहीं मिला। कमज़ोरी की वज़ह से प्रसव के समय चार दिन तक परेशान रही। बेटा हुआ। अभी एक माह का ही था कि सास एक दिन राधा से बहुत झगड़ी। बाद में ससुर व सास ने राधा का सारा सामान घर के बाहर फेंक दिया और अपना दिया सारा ज़ेवर वापस ले लिया। पोता होने के बाद सास को लगता था कि अब तो बहू को चाहे जितना परेशान करें, माँ बनने के बाद तो यह दूसरी शादी करने से रही।

पहले बेटे के तीन साल बाद दूसरे बेटे का जन्म हुआ। जिस समय गर्भ का पता चला, पति ने धमका कर कहा कि अगर बेटी पैदा हुई, तो उसकी ज़िम्मेदार तुम होगी। यह बात राधा को काँटे की तरह चुभ गयी। दिन पूरे होने के दो महीने पहले ही मायके चली गयी और बेटे को वहीं जन्म दिया।

बेटा गोद में ही था कि एन.एस.वाय. में काम मिल गया। काम के दौरान बेटे की देख-रेख की ज़िम्मेदारी पति पर आ पड़ी। बच्चों पर राधा ध्यान ही नहीं दे पाती। छोटा बेटा बीमार पड़ा, और इससे पहले कि डॉक्टर उसका रोग भी पकड़ पाते, राधा के दिल का यह नन्हा-सा टुकड़ा चल बसा।

⁵ एक जाति, जिसकी महिलाएँ प्रसव के बाद बच्चे की नाल काटती हैं।

पति को इस घटना से बहुत ज़बरदस्त झटका लगा—जिस बेटे का सब-कुछ किया था, उसकी मौत सहन कर पाना उनके लिये कठिन हो गया। और राधा को तो कई सदमे एक साथ झेलने पड़ गये—एक तो बच्चे को खोने का दुख, दूसरे पति की बीमारी और ऊपर से इस बात की पीड़ा और ग्लानि कि अगर मैं काम में इतनी व्यस्त न होती और बच्चे का ध्यान रख पाती, तो शायद यह दुख का पहाड़ न टूटता...।

बेटे की मृत्यु के ठीक नौ महीने बाद फिर एक बेटा हुआ।

000

तेरह साल की चाँदनी ब्याही गयी, तो शरीर और उमर दोनों से ही बच्ची थी। पति से सम्बन्ध बने तब माहवारी आयी। इसके दो ही माह बाद गर्भ में बिटिया आ गयी। चाँदनी को जब पता चला कि पेट में बच्चा ठहर गया है, तो बहुत दुख हुआ; लेकिन यह तो बस शुरुआत थी।

बेटी के जन्म के साथ तकलीफें बढ़ती गयीं। चाँदनी और बच्ची का ध्यान बिल्कुल भी नहीं रखा गया। हालात ऐसे बने कि छः माह की होते-होते बच्ची सदा के लिये बिछुड़ गयी। चाँदनी इस ग़म को सीने में छिपाये करौना में शादी के बाद फिर गर्भवती हुई। यहाँ जिस समय पहला बेटा पैदा हुआ, घर में चाँदनी बिल्कुल अकेली थी। गाँव में दो मुसलमान दाइयाँ थीं, लेकिन दोनों में से एक भी वक़्त पर नहीं पहुँच सकीं। एक बीमार थी और दूसरी गाँव के बाहर गयी हुई थी। मजबूरी में शौहर साहब मौर्य जाति की एक दाई को मदद के लिए बुलाने गये। पर उस दाई ने मुसलमान के घर के काम में हाथ लगाने से इन्कार कर दिया।

बेटे के आने से पहली बेटी के छिनने का ग़म थोड़ा कम हुआ। घर में लगातार झगड़ा चलता रहता। कभी-कभी चाँदनी के मन में आता कि ज़हर खा लें। फिर यह सोचकर सारे अत्याचार झेलने की हिम्मत बटोरती कि बेटे के सहारे ज़िन्दगी बिता देंगे। इस बीच दो बेटियाँ और पैदा हो गयीं। पति धमकाते कि मैं इसे नहीं रखूँगा—बेटियाँ ही बेटियाँ पैदा करती जाती है...।

दूसरी बेटी होने के पाँच दिनों बाद ही चाँदनी के ऊपर घर-बाहर का सारा काम आ पड़ा। तब उसे रह-रह कर अपनी अम्मा का वह दर्द याद आया, जब चाँदनी को जनने के साथ ही वह हथकरघे पर बैठ गयी थीं। न जाने क्यों अम्मा के दुख को याद करके अपना दुख कुछ कम हो जाता।

चाँदनी को एक और बेटा हुआ, पर वह पाँच साल तक खड़ा ही नहीं हो पाया। पोलियो भी नहीं था। सोलह हजार रुपये दवा में लगे, लेकिन ठीक नहीं हुआ। उसको अपने चले जाने का अहसास रहा होगा शायद, तभी मरने से पहले माँ की खुशामद की—“अम्मी, एक बार हमको अपना दूध पिलाय दो।”

चाँदनी की गोद में दूध पीती बेटी थी, पर मरते हुए इस बेटे को किस दिल से ‘ना’ कहती? लेकिन दूध भी कहाँ पिया उसने? उसने तो माँ की छाती से लगते ही दम तोड़ दिया!

कैसे होते हैं दिल, आत्मा और शरीर के ये रिश्ते! जिस तरह राधा ने एक बेटा खोकर दूसरा बेटा पाया, वैसे ही इस बच्चे के गुज़रने के ठीक नौ माह बाद चाँदनी भी दूसरे बेटे की माँ बनी।

000

संध्या को लगता था कि बच्चे जल्दी नहीं होने चाहिए। लोग क्या कहेंगे? गाँवों में बड़ी-बूढ़ियों को यही कहते सुना था कि शादी के बाद चार-पाँच सालों तक लड़की को खूब खा-खेल और हँस लेना चाहिये, फिर माँ बनना चाहिये। यही सोच कर संध्या शादी के तीन साल बाद भी बच्चा नहीं चाहती थी।

कहाँ तो राधा को तीन साल तक बच्चा न होने पर ताने मिलने लगे थे और कहाँ यह दूसरा दबाव? कब और कहाँ किस बात को मान्यता मिलेगी, किसे नहीं? यह सब ठीक-ठीक समझ पाना भी टेढ़ी खीर है।

संध्या के पेट में बच्चा ठहरे अभी तीन माह ही हुए थे कि दाहिने कूल्हे की हड्डी खिसक गयी! तकलीफ़ ज़्यादा बढ़ी, तो बिस्तर पकड़ लिया। पर घर के कामों का दबाव फिर भी कम नहीं हुआ। संध्या ने सोचा कि अगर खाना नहीं खाऊँगी, तो मुझसे कोई काम की उम्मीद भी नहीं करेगा। दो दिन न खाना खाया, न काम किया। मगर तीसरे दिन जेठानी ने सुना दिया, “खाना खाओ या न खाओ, वह तुम्हारी मरज़ी, लेकिन ससुराल में रहोगी तब काम तो करना ही पड़ेगा।”

संध्या की परेशानियाँ गर्भावस्था में बढ़ती ही जा रही थीं। पति भी चाहते थे कि मायके जाकर कुछ आराम पाये। पर संकोचवश घरवालों से कुछ कहने की हिम्मत नहीं कर पाते थे। आखिर, संध्या ने खुद ही अपने मायके ख़बर भिजवायी। भाई आया तो साथ चली गयी। पहले बेटे का जन्म मायके में ही हुआ।

000

परन्तु गरिमा जब शादी के तीन-चार साल बाद भी माँ नहीं बनी, तब लोगों को चिन्ता होने लगी। इलाज हुआ। तब शादी के पाँच साल पूरे होने के बाद उसे बच्चा ठहरा। पेट में बच्चा रहने के दौरान काफ़ी देखभाल हुई। सास, पति, देवर, ननद सभी ने बहुत ख़याल रखा। बच्चा तगड़ा और गोरा हो, इसके लिये गरिमा को खूब दूध, घी और गरी खिलाई जाती। पर प्रसव के दौरान बच्चा उल्टा हो गया। गाँव से उन्नाव काफ़ी दूर होने की वजह से ठीक समय पर अस्पताल भी नहीं पहुँच पाई। बेटा जिन्दा न बचा। गरिमा के लिये पहले बच्चे की मौत का सदमा असहनीय था। दूसरी बार बेटी पैदा हुई, तो पहले बच्चे का दुख फिर से बहुत उमड़ा। ख़ासकर उस समय, जब बेटी को देखकर सास का उत्साह ठंडा पड़ता देखा; किन्तु पति ने गरिमा को यह कहकर ढाँढ़स बँधाया कि पहले बेटे से तो यह बेटी भली, जिसने पैदा होने के साथ परिवार को ज़रा भी कष्ट नहीं पहुँचाया।

000

मधुलिका जब पहली बार माँ बनी थी, तब उसे कभी ओढ़ने को नहीं मिला तो कभी खाने को। पहली बेटी ब्याह के ढाई साल बाद हुई, पर जन्म लेने से पहले वह पेट में ही मर गयी। अगर मधुलिका सही समय पर अस्पताल पहुँच जाती, तो शायद ऐसा न होता। इसके बाद एक और बेटी जन्मी। सौभाग्य से दूसरी बेटी के जन्म के समय ननद को भी बच्चा हुआ था, इसलिए ननद के साथ मधुलिका

का भी ध्यान रखा गया। बेटी के छः साल बाद बेटा पैदा हुआ। चाँदनी के हाथों जनवरी 2003 में हमारे पहले डायरी-पाठ के दौरान जन्मे इस बेटे को *संगतिन-यात्रा* के हम सब यात्रियों ने मिलकर पुकारा-सार्थक।

000

सवाल-दर-सवाल

जवानी से मातृत्व तक के लम्बे सफ़र में आये इतने सारे अन्तरंग क्षणों और घटनाओं को इन पन्नों में उतार चुकने के बाद अत्यन्त उत्सुकता से यह विचार आना सहज-स्वाभाविक ही है कि हम आपको—अपने पाठकों को, यह सब लिखकर क्या बताना चाह रहे हैं? क्या ये कहानियाँ केवल इसलिये अहमियत रखती हैं, क्योंकि यह एक सामूहिक-प्रक्रिया का नतीजा हैं? या फिर इसलिये कि इनके माध्यम से हम आपके साथ कुछ बहुत नया या अभूतपूर्व बाँटना चाह रहे हैं?

दरअसल हमें पूरा अहसास है कि हमारी इन कहानियों में नया कुछ भी नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं तो हमारा जीवन बिल्कुल उन्हीं घटनाओं और उलझनों के बीच घिरा रहा है, जिनमें हमारी माएँ, बुआएँ, बहनें, भाभियाँ, और पड़ोसिनें दिन-रात जकड़ी रहती हैं। इसमें कोई शक नहीं कि रोज़मर्रा के इन बहुत ही आम अनुभवों के ऊपर सामूहिक-रूप से लिखने, बाँटने और चिन्तन करने की प्रक्रिया ने हमें अपने समाज के कई पहलुओं को समझने के लिये नयी नज़र दी है—चाहे वह औरत-मर्द के रिश्तों का पहलू हो, चाहे औरतों के उत्पीड़न के विभिन्न कारणों पर समझ बनाने की बात हो या फिर जाति-वर्ग और शहर व गाँव के बीच की दरारों का पहलू। सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों में जिस तरह मुद्दे उठते रहे हैं, उनमें अक्सर महिलाओं और दलित व ग़रीब वर्गों के संघर्षों के इन विभिन्न पहलुओं को आपस में जोड़कर देखने के बजाय उन्हें टुकड़ा-टुकड़ा कर के अलग कर दिया जाता है। इसकी वजह से हमारी दृष्टि, समझ और संघर्ष भी कहीं-कहीं अधूरे-से, तो कहीं-कहीं खोखले रह जाते हैं। इस सामूहिक-प्रयास के ज़रिये इसी अधूरेपन और खोखलेपन से निकलकर हमने सामाजिक जटिलताओं को थोड़ा और अधिक, क़रीब व गहराई से देखने की कोशिश की है।

डायरियों के सन्दर्भ में एक सवाल, जो अक्सर उठा और जिसने हमें थोड़ा चौंकाया भी, वह खुशियों के मौकों को लेकर था। ऐसा तो नहीं है कि ससुराल में रहते हुए हमारे जीवन में कभी खुशी के पल ही नहीं आये?

फिर क्या वजह है कि ऐसे लम्हे हमारी डायरियों में से लगभग पूरी तरह से गायब थे? हम में से कोई सोचता कि अपनी पसन्द की शादी की होती, तो शायद कष्ट कम झेलने पड़ते और खुशियाँ अधिक मिलतीं। राधा को ही लीजिए। उसने तो अपने ही मन का पति चुना था—फिर भी खुद को रोज के बन्धनों, अपमानों, और मार-पीट से कहाँ बचा पायी? कुछ मायनों में तो इन तकलीफों को झेलना और भी कठिन हो गया क्योंकि राधा को मालूम था कि जिससे अपना दर्द कहेगी, उससे यही ताना मिलेगा—“हम क्या करें, तुमने ही तो पसन्द किया था!”

फिर क्या यह मान लें कि दुखों के ज़ख्म हम सबके दिलो-दिमाग में इतने गहरे समा गये कि खुशियों के निशान भी धुंधले पड़ गये? या फिर यह भी हो सकता है कि अपने सपनों को हासिल न कर पाने के गम में हम इस कदर उलझ के रह गये हों कि सुख जब आये, तो हम उन्हें ठीक से पहचान ही नहीं पाये और खुशी के लम्हे हाथों में थमने के पहले ही फिसल गये...

जवानी की शुरुआत से अब तक हमने सबसे बड़ा जो बोझ ढोया, वह है अपने परिवारों, कुनबों और नातेदारों की इज़्जतदारी का बोझ। इस इज़्जतदारी के नाम पर हमारे ऊपर जाति और कुल से जुड़ी मान-मर्यादाओं की जो परिभाषाएँ थोपी गयीं, उनमें कभी दहेज की माँगें शामिल थीं, तो कभी सख्त परदा, और कभी निरी गुलामी। पति, ससुर, पिता और भाई की नाकें बचाने के लिये कभी हमारा तिलक वापस लौटाया गया, तो कभी हमें ज़बरदस्ती ब्याह दिया गया। कभी हमारी कोख की वफ़ादारी पर सवाल उठाये गये, तो कभी हमारी दूध-पीती सन्तान को ही छीनकर हमसे अलग कर दिया गया....! कुल मिलाकर देखें तो वही लगा, जो राधा ने एक जगह अपनी डायरी में कहा है कि जवानी और शादी का मतलब हुआ अपने पूरे अस्तित्व पर औरों का कब्ज़ा हो जाना। जैसे, कड़ा परदा चाहे मज़हब के नाम पर थोपा गया हो चाहे मान-मर्यादा बनाये रखने के बहाने से, पर उसका मक़सद यही रहा है कि औरत की आज़ादी पर पति और ससुराल का कब्ज़ा बना रहे।...लेकिन पत्नी परदे के बाहर हो, तब भी उसके शरीर और यौनिकता पर पूरा हक़ पति का ही माना जाता है—पति ने जब चाहा बीवी से सम्बन्ध बनाया, और जब चाहा तब उसे तन और मन से तिरस्कृत करके अकेले में तिलमिलाने और आँसू बहाने के लिए छोड़ दिया।

कैसी दिलचस्पी भरी विडम्बना है यह! इज़्जतदारी की इसी धुरी पर नाचा करती हैं मर्दानगी की वे सारी परिभाषाएँ, जिनके बोझ को हमारे आदमी और समाज, दोनों इतनी मेहनत और ईमानदारी से ढोते हैं। मर्दानगी के परम्परागत बोझ को अपने कन्धों पर लादे दुनिया कभी तो पल्लवी से पूछती है कि उसकी शादी क्यों टूटी और उसने बच्चा किसका जना...? और कभी चाँदनी की जिन्दगी से उसकी नन्हीं-सी बच्ची का नामो-निशान मिटाने पर तुल जाती है, ताकि किसी को कानोंकान यह पता न चले कि उसके मौजूदा पति से पहले कोई दूसरा मर्द भी उसे अपनी 'मिल्कियत' बनाकर रख चुका है। आज चाँदनी की पहली बेटी ब्याहता हो गयी है, लेकिन अपनी ज़बान पर चाँदनी सत्रह साल तक इस बेटी का नाम नहीं लायी। डायरी-लेखन की इस प्रक्रिया के दौरान जब दिसम्बर 2002 में चाँदनी ने बेटी से बिछोह के दर्द को पहली बार सबके साथ बाँटा, तो हम सब हिल गये। हमारे दिलों को बार-बार यही सवाल मथते रहे कि चाँदनी और उसकी बेटी को दुख के इतने बड़े पहाड़ क्यों झेलने पड़े? चाँदनी का दूसरा पति आज तक उसकी पहली शादी की सच्चाई को बर्दाश्त क्यों नहीं कर पाता? दूसरा शौहर पाने के लिये चाँदनी को यह क्यों नकार देना पड़ा कि नये पति से पहले भी उसकी जिन्दगी में एक पति और सन्तान की मौजूदगी रह चुकी है? क्या यह सब सिर्फ़ इसलिये कि पुरुष की जिस मर्दानगी को हमारा समाज दिन-रात पालता, पोसता व पूजता रहता है, पितृसत्ता पर ज़रा-सा प्रश्न और ज़रा-सी ख़रोंच लगते ही वही मर्दानगी चरमरा जाती है?

पति के न रहने पर भी तो इज़्जत-आबरू व मर्दानगी के इन सारे ढकोसलों और अपमानों से पिण्ड नहीं छूटता।

बिना पति की स्त्री को पहले तो पूरी तरह से कुनबे के पुरुषों की आश्रिता बना दिया जाता है। फिर इन्हीं स्त्रियों को अपशकुन की संज्ञा देकर समाज इतनी बेदर्दी से किनारे कर देता है कि जिन सन्तानों को अपने हाड़-माँस घुलाकर वह पालती-पोसती है, उनकी खुशी में भाग लेने का अधिकार भी छिन जाता है। संध्या और गरिमा की माँओं के साथ यही तो घटा। विधवा होने के कारण दोनों को अपनी-अपनी बेटा की शादी की सारी रस्मों से दूर रखा गया। गरिमा के विवाह का सारा काम उसके ताऊजी और ताईजी के हाथों सम्पन्न हुआ। जिस समय ताऊजी द्वारचार करने लगे, माँ चक्कर खाकर गिर पड़ीं। माँ की यह हालत देखकर गरिमा बहुत रोयी—उस वक़्त समझ नहीं पायी कि माँ की इस हालत के लिये वह खुद दोषी है या समाज के वे संस्कार, नियम, कायदे, और क़ानून जो बिना पुरुष की औरत से जीने के सारे सहारे ज़बरदस्ती खींच लेते हैं। जिस समय गरिमा का हाथ पति को पकड़ाया गया, उसे बार-बार यही लगे: “हाय, अब तो शादी हो गयी। अब क्या करूँ? माँ से बिछुड़ने से तो अच्छा है कि अभी मर जाऊँ।”

संध्या भी अपनी शादी को लेकर भाइयों और माँ को परेशान देखती, तो सोचती: “काश मैं मर गयी होती।” जिस समय बेटा की शादी की रस्में निभाई जा रही थीं उस समय संध्या की माँ के लिये भी पति की मृत्यु का सदमा हरा हो गया। रस्मों-रिवाज भी हमारे दुखों को गहरा करने में कितनी बड़ी भूमिका निभाते हैं!

000

अपने जीवन के हिस्से में आये इन अनुभवों को आपस में कहते और गूँथते वक़्त कई बार महसूस हुआ कि होश सँभालते ही समाज ने हमें जो मान्यताएँ दीं या जो सपने देखना सिखाया, वह भी अनजाने में ही कितने बोझिल बन गये! हमारे लिये उन सपनों में न तो ग़रीबी या काली-चमड़ी के लिये इज़्ज़त की जगह थी, न ग्रामीण जीवन या खेती-किसानी के लिये...। यह भी लगा कि बचपन की अपेक्षा जीवन के इस पड़ाव में जाति व वर्ग के मुद्दे हमारी कहानियों में अक्सर धुँधला गये और मायके तथा ससुराल से बनते-बदलते सम्बन्ध; उनसे जुड़ी तमाम उम्मीदें और ज़िम्मेदारियाँ ही हमारे मन पर अधिक हावी रहीं।

इसके बावजूद जाति व वर्ग की ग़ैरबराबरियाँ कई बार नुकीली बनकर उभरीं और, उनकी चुमन हमें याद दिलाती रही कि जातिगत-भेदभाव के ढाँचे इज़्ज़त-आबरू के बोझ को भी अलग-अलग तरह के जामे पहनाते हैं। उदाहरण के तौर पर, गरिमा जब जवान हुई, तो माँ के भीतर यह डर समाया कि कहीं बिटिया से कोई ऐसी ऊँच-नीच न हो जाय, जिससे उनके ब्राह्मण-कुल की नाक नीची हो। वहीं, ग़रीबी और अस्पृश्यता से लड़ते राधा के माता-पिता ने खुद को दोहरे दबाव में पाया। उनका मन इस भय से घिर गया कि अगर किसी सवर्ण-पुरुष ने बेटा के साथ कुछ कर दिया, तो परिवार कहीं का नहीं रहेगा। इसी तरह जब पहले प्रसव के दौरान पल्लवी अकेली पड़ गयी, तब उसे यह तकलीफ़ तो हुई कि ऐसे समय में भी कोई हाथ धरने वाला नहीं है, लेकिन छुआछूत से जुड़ा वह अपमान नहीं झेलना पड़ा, जो मौर्य महिलाओं के बर्ताव की वजह से दूसरी-ससुराल में चाँदनी को झेलना पड़ा था। इस ज़िल्लत ने चाँदनी का मन इतना दुखाया कि उसने दाई बनने की ठान ली। उसने जबसे यह काम

सीखा, क्या मजाल है कि उसके काम पर कोई छुआछूत और ग़ैरबराबरी की छाया तक डाल पाये। जिसे भी, जहाँ भी, जिस वक़्त भी दाई की ज़रूरत होती है, चाँदनी वहाँ ज़रूर पहुँचती है।

इसी तरह पारिवारिक-हिंसा के अनेक पहलू भी पूरी तरह जातिगत भेदभाव तथा अभीरी-ग़रीबी की बढ़ती हुई खाइयों के दलदल में फँस जाते हैं। जब सरकारी नीतियाँ ग़रीबों व दलितों को सामाजिक और आर्थिक रूप से लगातार और अशक्त बनाती जा रही हैं और जब इस जूझन व टूटन के माहौल में जुआ-शराब मर्दानगी के नये चिन्ह बनकर उभर रहे हैं, तब इन लगातार बिगड़ते हालातों के बीच राधा, मधुलिका और चाँदनी जैसी औरतें उम्मीद की रोशनी तलाश करने कहाँ जायें?

किशोरावस्था, शादी और ससुराल की बातें कहते-सुनते हम सबने अपने हालात और परेशानियों को अक्सर अपनी माओं, सासों, जेठानियों या ननदों के इर्द-गिर्द मँडराते महसूस किया। और, अन्ततः जब मथने बैठे, तो सवाल उठा कि क्या ये सारी कहानियाँ सुनाकर हम उसी पुरानी कहावत 'औरत ही औरत की दुश्मन होती है' की पुष्टि नहीं करना चाह रहे हैं?

पर नहीं, क़तई नहीं! हमें तो लगता है कि ऐसी कहावतें महिलाओं की ज़िन्दगियों के उलझावों के साथ इन्साफ़ बिल्कुल नहीं कर पातीं।

गरिमा को लगता है कि उसकी माँ उसे मार-पीट कर इतना शालीन बना देना चाहती थी कि उसे ससुराल में ताने न सुनने पड़ें। उधर पल्लवी और मधुलिका की माओं का मानना था कि बिटिया अगर दबाव, नियन्त्रण और ज़िल्लत की आदी होगी, तो ससुराल की हर मुसीबत आसानी से झेल ले जायेगी। कभी-कभी तो माँ की बदन और मन को तोड़ देने वाली डॉट व मार उन्हीं के आँसुओं और प्यार के साथ इस तरह घुल-मिल जाती थी कि दोनों को जुदा कर पाना नामुमकिन हो जाता था...। ससुराल आने पर अपनी सासों के साथ भी हमारे रिश्ते इसी तरह कई परतों में लिपटे रहे। मायके में अक्सर देखा था कि पिता सीधे हमको डॉटने-पीटने के बजाय हमारी अम्माओं को दहलाकर हमारे दिल में ख़ौफ़ बिठाते थे। इसी तरह ससुराल के मर्दों की इज़्जत बचाने का काम हमारी सास और जेठानियों के जिम्मे था। और यह भी कैसे नकार सकते हैं कि इस पितृसत्तात्मक-व्यवस्था में सास बनने के कुछेक फ़ायदे तो महिलाओं को मिलते ही हैं। बरसों बहू बनकर ससुराल की चक्की में पिसने के बाद उस नयी ताक़त का लाभ उठाने का मोह सासों कहाँ छोड़ पाती हैं? हमारा सामाजिक ढाँचा जब तक नहीं बदलेगा, तब तक सासों यह मोह छोड़ेंगी भी कैसे?

000

अन्त में कुछ शब्द उन चुप्पियों और खामोशियों के बारे में, जिन्हें आपसी साफ़गोई, ईमानदारी और गोपनीयता की तमाम क़समें खाने के बावजूद हम अपने लेखन में आने से नहीं रोक पाये। डायरियों के लेखन और सामूहिक चर्चाओं के करीब दो माह बाद जब हम इस पुस्तक की रूपरेखा पर विचार-विमर्श कर रहे थे, तब हमारी एक चर्चा में पहली बार समलैंगिकता का मुद्दा उठा। अक्सर हमें महसूस होता है कि आमतौर पर इस मुद्दे पर जिस तरह से बातचीत होती है, हमारे जैसे परिवेश की महिलाएँ उससे जुड़ ही नहीं पाती हैं।

सारी डायरियों में सिर्फ राधा ही अपनी पक्की सहेली के साथ घटी एक घटना का बखान करने का साहस जुटा पायी, जबकि हममें से अधिकतर लोगों ने अपने जीवन में इस तरह की नज़दीकियों से—चाहे दूर से ही सही—पर साक्षात्कार ज़रूर किया था। इसके बावजूद यह बातचीत हमारे लिये इतनी आसान नहीं थी, लेकिन जब इसकी तह में जाने लगे तो गहरे पैठते चले गये। खासकर उस समय, जब प्रेम सम्बन्धों की जटिलताओं की बात पल्लवी ने सीधे अपनी निजी जिन्दगी की कशमकश से जोड़ दी। स्त्री और पुरुष के बीच किस तरह के शारीरिक, मानसिक, और भावनात्मक रिश्ते बन पाते हैं हमारी इस दुनिया में? और वे सारे रिश्ते कौन से हैं, जो लाख चाहने पर भी कभी हम अपने-अपने पतियों के साथ बना ही नहीं पाये? वे कौन से अन्तरंग लम्हे हैं, जिन्हें लाख सपने सँजोने के बावजूद हमने कभी जिया ही नहीं? किस तरह हमारे पारिवारिक ढाँचों और समाजीकरण ने ये रिश्ते पनपने ही नहीं दिये? तो फिर चाह होने पर स्त्रियाँ एक-दूसरे से जुड़कर क्यों नहीं बना सकतीं वे सारी क़रीबियाँ, जो हमारे समाज में उन्हें पुरुषों के साथ अक्सर जीने को मिलती ही नहीं? सवाल के इस चक्रव्यूह में धिरकर एक समूह के रूप में हमने पहली बार समलैंगिकता को भी अपने जीवन और कष्टों से दूर रखने या किसी हल्के मसले के रूप में देखने के बजाय एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दे का स्थान देने की शुरुआत की।

इस एक चर्चा के अलावा दूसरे भी कई मौके आये, जब कुछ आवाज़ें मौन बनी रहीं। ऐसा लगा कि चाँदनी ने तो अपने मन की डिब्बिया खोल दी, लेकिन हममें से कुछ लोग अपनी-अपनी डिब्बियाँ खोलने के लिये छटपटाते रह गये, पर अघखुली ही रह गयीं वे डिब्बियाँ। यह कहना भी शायद ग़लत नहीं होगा कि चाँदनी भी इतनी जल्दी सत्रह साल से बन्द अपनी इस एक डिब्बी को इसलिये खोल सकी, क्योंकि पहली बेटा शादी करके पैदा की थी। अगर कहीं यह बिटिया शादी के बिना जीवन में आयी होती, तो क्या इतनी जल्दी कह पाती बरसों से जतन से सँभाला हुआ अपना यह दुख?

तो जवानी की दहलीज से मातृत्व की चौखट तक के इस लम्बे सफ़र की कहानी का अन्त करते समय अब हमारी यही ख़्वाहिश है कि हम अपनी-अपनी इन अघखुली डिब्बियों की छटपटाहट को ख़त्म करने की ताक़त पा सकें...और, दिमागी सोच-समझ पैनी करने के साथ-साथ अपने और दूसरों के दिलों के दरवाज़े भी इस तरह खोल सकें कि रोज़मर्रा के सामाजिक, जिस्मानी, और जज़्बाती-शोषण के खिलाफ़ सबको अपनी लड़ाइयों को लड़ने के लिये पर्याप्त जगह मिल सकें...और, बरसों से घुटती हुई आवाज़ों को गाने और चीखने के लिये मनचाहा स्वर भी!